विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/85

वर्ष १४ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२९ • ज्येष्ठ पूर्णिमा [शक] • दि. ३–६–१९८५ • अंक १२

सही बुद्ध-वंदना

(२)

जब कोई सिपाही अपने कमांडरको सलामी देता है याने वंदन करता है तो बड़ी मुस्तैदीसे अपनी बंदूकको हाथमें पकड़ता है, जितनी हो सके उतनी छाती चौड़ी करता है, गर्दन सीधी करता है, कंधे चौरस करता है और अटेंशन (सावधान) की मुद्रा धारण करता है। एक सैनिक द्वारा अपने कमांडरकी यही वंदना है, यही सम्मान है। कमांडरने उसे सावधान रहना सिखाया है और वह वंदनाके रूपमें अपनी संपूर्ण सावधानी ही व्यक्त करता है। यों आज्ञाका पालन करता हुआ अपने बड़ेका सम्मान करता है।

इसी प्रकार जिस सम्यक् सम्बुद्धने हमें सजग रहते हुए अंतर्मुखी हो, मुक्तिदायिनी विपश्यना करनी सिखाई उसकी सही वंदना यही है कि हम पालथी मारकर बैठें, कमर, पीठ, गर्दन सीधी रखें और अंतर्मुखी होकर काय-चित्त-प्रपंचके प्रति अनासक्त रहते हुए विपश्यना करें। एतं बुद्धान वंदनं।

सामान्यतया किसी श्रद्धालुके मनमें श्रद्धा उमड़ती है तो वह अपने श्रद्धाभाजनके चरणोंमें फूल चढ़ाता है। भक्तके मनमें भक्ति उमड़ती है तो वह अपने भगवानको पुष्पांजलि अर्पित करता है और अपनी भक्ति-भावना प्रकट करता है। लोक-जीवनमें ऐसा ही होता है। इसके अपने थोड़ेसे लाभ भी हैं। इससे चित्त प्रमुदित होता है। कुछ देरके लिए विकार-विहीन होता है। अतः कल्याण-फलगामी होता है। परन्तु मुक्त नहीं होता। और सम्यक् सम्बुद्ध तो भवचक्रसे मुक्त होना सिखाते हैं। अतः सम्यक् सम्बुद्धके सच्चे अनुयायी द्वारा की गयी वंदना तो उपरोक्त प्रकार की ही होनी चाहिए। सामान्य श्रद्धालु आराधककी बात अलग है।
इस संदर्भ में भगवानके जीवनकालकी एक घटना।

पुष्प - वर्षा

भगवानकी ८० वर्ष की अवस्था। वैशाख-पूर्णिमा की रात। यह घोषणा हो चुकी है कि इस रातकी समाप्ति पर भगवान अपना शरीर त्यागेंगे। महापरिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। कुशीनगरके एक छोर पर एक विहारके बाहर खुलेमें, युग्म साल-वृक्षके नीचे बिछी हुई संघाटी पर भगवान लेटे हैं। आनंद उनकी सेवा पर

धम्म वाणी

आरद्ध विरिए पहितत्ते निच्चं दळ्हं परक्कमे।
समग्गे सावके पस्स एतं बुद्धान वंदनं॥

महापजापति गोतमी, थेरी अपदानं-१७१.

देखो! यह श्रावक-संघ किस प्रकार एकत्र होकर समग्र रूपसे साधनामें लगे हैं। चित्त-शुद्धिके लिए नित्य दृढ़ पराक्रम करते रहते हैं। सचमुच यही है बुद्धोंकी वंदना!

है। अंतिम दर्शनोंके लिए भक्तजनोंकी भीड़ उमड़ रही है। लोग भगवानके सम्मानमें पुष्प आदि चढ़ा रहे हैं। कहते हैं उस समय उन युग्म साल-वृक्षोंमें बिना मौसमके फूल खिल उठे और भगवानके शरीर पर गिरने-बिखरने लगे। भक्ति-विह्वल देवगण भगवान पर दिव्य पुष्प और दिव्य चंदन-चूर्ण बरसाने लगे। दिव्य वाद्य और संगीत बजने लगे। तब भगवानने आयुष्मान आनंदको सम्बोधित करते हुए कहा, "आनंद! यह जो पुष्प-वर्षा हो रही है, वाद्य और संगीत बज रहे हैं, इनसे तथागतका मान-सम्मान, आदर-सत्कार, पूजन-अर्चन नहीं होता। तथागतका मान-सम्मान, आदर-सत्कार, पूजन-अर्चन तभी होता है जबकि कोई भिक्षु या भिक्षुणी, गृहस्थ उपासक या उपासिका सद्धर्म के मार्ग पर आरूढ़ होता है। धर्मानुसार आचरण करता है।"

— "एवं हि वो आनंद! सिक्खितब्बन्ति।"

— "आनंद! ऐसा ही सीखना चाहिए।"

भक्ति-भावावेशके बाह्य प्रदर्शन मात्रसे वह लाभ कहाँ मिल सकता है जो कि तथागत जन जनको प्राप्त कराया चाहते थे! यानी शुद्ध धर्मके मार्ग पर चलकर समस्त विकारोंसे विमुक्ति, समस्त दुःखोंसे विमुक्ति। ऐसा कर ले तो ही बुद्धकी शिक्षाको ठीक-ठीक समझा है, तो ही ठीक-ठीक पालन किया है और तो ही बुद्धका सही सम्मान किया है।

• • •

इसी अवसरका एक और प्रसंग।

चैत्य - पूजन

आनंद पूछते हैं, "भगवान! आपके मृत शरीरका क्या

किया जायेगा ?" भगवान समझाते हैं, "जो तथागतके अनेक भक्तजन हैं वे चिता पर जलाए हुए इस शरीर के अवशेषों पर स्तूप बनायेंगे और पुष्प, गंध, माला आदिसे उसका पूजन-अर्चन करेंगे, अभिवादन करेंगे। यों कुछ देरके लिए चित्तको निर्मल करेंगे और परिणामतः दीर्घकाल तक अपना हित-सुख साधेंगे। सद्गतिके अधिकारी होंगे।"

परन्तु तथागतकी गंभीर शिक्षा केवल सद्गतिके लिए ही नहीं है। सारी गतियों के परे, नितांत विमुक्त अवस्था तक ले जानेवाली है। अतः जो तथागतकी मूल शिक्षाको समझनेवाले मुक्तिपथके पथिक हैं, उनके लिए भगवान कहते हैं, "तुम इस प्रकार के शरीर-पूजनसे अपने आपको अलग रखो और परम सत्यकी प्राप्ति में लग जाओ।"

"सदत्थे अनुयुञ्जथ सदत्थे अप्पमत्ता आतापिनो पहीतत्ता विहरथ।"

यानी सदर्थ में जुट जाओ। सदर्थ की प्राप्तिके लिए प्रमाद-रहित होकर तपो। आत्मभाव त्यागकर साधनामें लगो।

परन्तु सभी लोग तथागतके गंभीर मंतव्यको पूरी तरह नहीं समझ पाते। सभी लोग मुक्तिके मार्ग पर नहीं लग पाते। अतः अपनी अपनी समझके अनुसार तथागतकी शिक्षासे जो जितना जितना लाभ उठाएँ, उठाएँ। जो समझ गए वे तो परम लाभ ही उठायेंगे। वह बुद्ध-वंदनाको सामान्य वंदनासे ऊपर उठाकर साधनाके धरातल पर ही स्थापित करेंगे। साधना ही सही बुद्ध-वंदना है। भगवान मुमुक्षुओंको जीवन भर यही सिखाते रहे।

● ● ●

उनके जीवनका एक और प्रसंग।

आनंदबोधि

कोशलदेशकी राजधानी श्रावस्ती। सेठ अनाथपिंडकने करोड़ोंकी संपदा लगाकर जेतवनमें महाविहार बनाया। भगवान वर्षावासके दिनों उस विहारमें रहते और लोगों को धर्म सिखाते। वर्षावासके बाद वे अन्य प्रदेशोंके लोगोंको धर्म बांटनेके लिए चारिका के लिए निकल पड़ते। भगवानके निवासकालमें विहारमें जो चहल-पहल रहती वह उनकी अनुपस्थितिमें बहुत कम हो जाती। वातावरण उतना जीवंत नहीं रहता, फीका पड़ जाता। कुछ एक नगर-निवासी भक्तजन विहारमें आते। भगवानके निवासकी खाली कुटीके सामने श्रद्धाके फूल चढ़ाकर चले जाते। पर उन्हें संतोष नहीं होता। श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए उन्हें कोई ठोस आधार चाहिए था। श्रेष्ठि अनाथपिंडकको यह कमी खलती। लोग चाहते थे कि भगवानकी अनुपस्थितिमें वहाँ कोई मंदिर हो जहाँ वे अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकें। उन दिनों यह प्रथा थी। लोग अपने श्रद्धाभाजन देवी, देवता, यक्ष, ब्रह्म अथवा संतोंके नाम पर चैत्य बनाते थे, मंदिर बनाते थे। इनमें अपने ईष्ट की मूर्ति अथवा चिन्ह स्थापित करते थे। इन चैत्यों व देवस्थानों पर अकेले अथवा समूह में भक्तजन जाते, पूजन-अर्चन करते, पत्र-पुष्प चढ़ाते, धूप-दीप जलाते, मनौती मनाते और मनौती पूरी होने पर उत्सव-मंगल मनाते। यों इन देव-स्थानों पर बड़ी धूम-धाम और चहल-पहल बनी रहती।

श्रेष्ठि अनाथपिंडक चाहता था कि ऐसा ही कुछ जेतवन पर भी हो, जिससे भगवानकी अनुपस्थितिमें भी वहाँ चहल-पहल बनी रहे। उसने अपनी मनोकामना भिक्षु आनंदके सामने प्रकट की। आनंद ने बहुत व्यवहार-कौशल्यसे यह बात भगवान तक पहुँचायी। उसने भगवानसे पूछा, "भन्ते भगवान! चैत्य कितने प्रकारके होते है?"

भगवानने कहा, "तीन प्रकार के — शारीरिक, उद्देसिक और पारिभोगिक।" आनंदने पूछा, "भगवान! क्या बुद्धके जीते जी उनके नाम पर कोई चैत्य बनाया जा सकता है?"

भगवानने कहा, "शारीरिक चैत्य तथागतके शरीर त्यागने पर उनकी अस्थि-अवशेषों पर ही बन सकता है। उद्देसिक चैत्य में मूर्ति, चिन्ह आदिकी स्थापना द्वारा मनोकल्पना की प्रमुखता होती है जो कि अवांछनीय है। हाँ, पारिभोगिक चैत्य तथागतके जीवनकाल में भी बन सकता है।"

आनंदने अनाथपिंडककी इच्छा सामने रखते हुए जेतवनमें ऐसा एक पारिभोगिक चैत्य स्थापित करनेकी भगवानसे स्वीकृति मांगी। ताकि उनकी अनुपस्थितिमें जेतवन जनशून्य और उत्साह शून्य न हो जाया करे।

यह तो स्पष्ट था कि भगवानके परिनिर्वाणके बाद उनके द्वारा प्रयोगमें लाए हुए भिक्षापात्र, चीवर, लकुटी आदि वस्तुओं पर चैत्य बनने लगेंगे। परन्तु जीते जी वे ऐसी परंपरा स्थापित किया चाहते थे जो कि परम अर्थ के क्षेत्रमें स्वस्थ हो, कल्याण-कारिणी हो। वह अपनी उपभोगकी हुई किसी भौतिक वस्तु पर कोई चैत्य बनवाना नहीं चाहते थे। लोकोत्तर निर्वाणकी प्राप्ति के लिए जिसका उपभोग किया वह तो बोधिवृक्ष था। अतः आनंदका ध्यान उसी ओर खैंचते हुए भगवानने कहा, "तथागत के जीते जी बोधिवृक्ष ही पारिभोगिक चैत्य होता है जिसकी छायामें बैठकर अन्य लोग भी निर्वाणके सुखका रसास्वादन कर सकें।"

आनंदको यह बात बहुत भायी। उसने महामोग्गलानसे प्रार्थना की और उनके जरिए बोधगयाके बोधिवृक्षका बीज मंगवाया और महाराज प्रसेनजित, माता विशाखा तथा अन्यान्य भक्तोंकी उपस्थितिमें जेतवनके मुख्य द्वार के समीप श्रेष्ठि अनाथपिंडक द्वारा इसका आरोपण करवाया। जब वृक्ष बढ़कर तैयार हुआ तो आनंदके सत्प्रयत्नोंसे लगाया गया था इसलिए यह वृक्ष 'आनंदबोधि' कहलाया।

आनंदने भगवानसे प्रार्थना की कि जिस प्रकार उन्होंने बोधिवृक्षके नीचे रात भर साधना की थी, उसी प्रकार यहाँ भी करें। पहली बार सम्यक् सम्बोधि जगानेवाली साधना तो अद्वितीय ही होती है। फिर भी भगवानने साधकोंके कल्याणके लिए आनंद-बोधिके नीचे एक पूरी रात निरोध समापत्तिकी साधना की और उस स्थान के अणु अणु को निर्वाणधातु और धर्मधातु की तरंगोंसे आप्लावित कर चिरकालके लिए परम पावन बना दिया।

सर्वसाधारण सामान्य गृहस्थ ही नहीं, अनेक ऐसे भिक्षु भी जो कि भगवानके साधना-संबंधी गंभीर धर्म में परिपक्व नहीं हो

पाए थे, वे भगवानके जीवनकालमें ही इस आनंदबोधि रूपी चैत्य पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुष्प आदि चढ़ाकर पुण्य अर्जित करते रहे और यह परंपरा आगे भी चलती रही। परन्तु साथ साथ एक अन्य परंपरा गंभीर साधकोंकी भी थी। उन्होंने भगवानके जीवनकालमें और तत्पश्चात् भी आनंदबोधि का उपयोग साधनाके लिए किया। आनंदबोधि आज भी जीवित है। संभवतः यह संसारका सबसे पुरातन बूढ़ा वृक्ष है। भारतवर्ष में पुनर्जागृत विपश्यनाके गंभीर साधक आज भी जब इस पावन वृक्षके नीचे बैठकर विपश्यना साधना करते हैं तो देखते हैं कि कितनी शीघ्र उनका मानस अनित्यबोध की धर्म-तरंगोंसे आप्लावित होने लगता है।

◎ ◎ ◎

गुरुदेवकी वंदना-विधि

साधनाके धरातल पर भगवान बुद्धको की गयी सही वंदना की यह विधि गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा ब्रह्मदेशमें प्रवाहित होती चली गयी। भले एक क्षीण धाराके रूपमें ही प्रवाहित होती रही। परम पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिनके जीवनकालमें इस धाराके दर्शन होते थे। अधिकांश श्रद्धालु जनता और अनेक नए नए साधक लोकाचार के अनुकूल उनको तीन बार झुककर नमस्कार करते थे और यों अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। परन्तु जो गंभीर साधक थे, वे जब नमस्कार करें तो इस शुद्ध परंपराके अनुसार ही करें; ऐसा गुरुदेव सिखाते थे।

प्रणाम करते हुए पहली बार झुकने के पूर्व साधक अपने सिर के सिरे पर उदय-व्यय की तरंगोंकी अनुभूति करे और अनित्य-बोध जगाते हुऐ नमस्कार करे। दूसरी बार इसी उदय-व्ययवाली संवेदनाके आधार पर दुःखबोध और तीसरी बार अनात्मबोध जगाते हुए ही नमन करे। तो ही सही मानेमें नमस्कार हुआ। नहीं तो यंत्रवत् कर्मकांड हो गया। कभी कभी किसी पुराने साधकके नमस्कार करने पर गुरुदेव उससे प्रश्न कर लेते थे, "क्यों रे! कैसे नमन किया तूने? प्रज्ञापूर्वक किया या नहीं?"

कभी कभी साधक यंत्रवत् नमस्कार करनेके बाद स्वयं होश में आ जाता तो पुनः धर्म-प्रज्ञापूर्वक तीन बार नमन करता।

शरीर और चित्त-प्रपंचके अनित्य, दुःख और अनात्म स्वभावको अनुभूतियोंके स्तर पर समझता हुआ विपश्यी साधक सर्वथा निसंगभावसे वंदना करता है तो ही सही वंदना होती है। सही पूजन होता है। सही सम्मान होता है।

एतं बुद्धान वंदनं!

और इसीमें साधकका सही कल्याण निहित होता है।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

साधकोंके उद्‌गार

दिल्ली से श्री यशपाल जैन लिखते हैं, "……प्रभुसे प्रार्थना है कि लोक-मंगलके लिए आपका जो अनुष्ठान चल रहा है, वह अबाधगतिसे, अनवरत, चलता रहे और आप स्वस्थ रहकर उसका अनेक वर्षों तक संचालन करते रहें।

सचमुच आपने विपश्यना द्वारा मानव जातिके लिए सच्ची शांति और सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त किया है। कितनी अशांति, कितनी कुपठा, कितनी निराशा छाई है आज दुनिया में। युद्ध की आशंकासे राष्ट्र भयभीत हो रहे हैं। संहारक अस्त्रोंकी विभीषिकासे, जन संहारकी कल्पनासे लोग कांप रहे हैं। जब वर्तमान अस्थिर हो, भविष्य अनिश्चित हो तो व्यक्तिके पैरोंका डगमगाना स्वाभाविक है। आपने मानवकी भंवरमें पड़ी नावको बाहर निकालनेका रास्ता दिखाया है, उसकी डगमगाती आस्थाको सुदृढ़ करनेका उपक्रम किया है और मानवके खोये हुए विश्वासको फिर से प्राप्त करनेका हौसला दिया है।

राष्ट्रोंकी सर्वसंहारकारी रणनीति की अग्निमें धर्मों ने घी डालकर उसे और भी प्रज्वलित कर दिया है। धर्म आज संकीर्ण सम्प्रदाय बन गए हैं। उनमें आपसी संघर्ष है। उन्होंने राजनितिकी अस्मिताको प्रोत्साहित किया है। आज धर्म-पुरुष राजनेताकी कृपाके आश्रित हो गए हैं। भारतीय संस्कृति, जिसने किसी युगमें सारे संसारको अपना कल्याणकारी संदेश दिया था, आज बिलख रही है, कला सिसक रही है। जब उनका अधिष्ठाता मानव अपना अस्तित्व खो बैठा है तो उनकी महत्ता क्या रहेगी?

ऐसी भयावह परिस्थिति में "विपश्यना" ने आशा का एक नया संदेश दिया है। वह प्रभुका वरदान सिद्ध हो रही है। वह संजीवनी का काम कर रही है। मानव-जातिको यह खोई जीवन-दायिनी बूटी सुलभ करानेमें आप निमित्त बने और बन रहे हैं, इसके लिए कोटि-कोटि जन आपके सदा आभारी रहेंगे।

भगवान आपको बहुत लंबी आयु दे, आपको खूब स्वस्थ रखे और आपके हाथों इस परम उपकारी विद्याका दिन दूना, रात चौगुना प्रसार होता रहे, यही मेरी आन्तरिक कामना और प्रभु से प्रार्थना है।"

◎ ◎ ◎

सीतामढ़ीसे अंजनीकुमार अग्रवाल लिखते हैं, "आपके आशिर्वादसे मुझे नया जीवन मिला। धर्म-ज्योति मिली, जिससे मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है।

इस धर्म-मार्ग पर आनेके पूर्व लगता था जीवनमें सरसता नहीं है। यंत्रवत भौतिक कार्योंकी आपा-धापी में जीवन बीत रहा था और मैं मानसिक, शारीरिक तथा मनोबलसे शक्तिहीनता (डिप्रेसन) के दौरसे गुजर रहा था। मन करता था कि कहीं शांतिकी खोजमें, आध्यात्मके मार्ग पर निकल जाऊँ। इसी बीच मेरे भाई श्री श्रवण-कुमारने मुझे इस धर्म मार्ग पर, धर्म-रस ग्रहण करनेके लिए प्रेरित किया। मुझे ४ अगस्त, ८२ को धम्मथली, जयपुरके शिविरमें शामिल होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वहाँ इस स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर पर काई आदि झिल्लियाँ हटानेके लिए जुताई शुरू हुई और ७ अगस्तको "विपश्यना" का अमृत बीज पड़ा जो ११ को अंकुरित हुआ, पत्तियाँ निकलीं जिसकी नित्य सिंचाई कर रहा था। परन्तु ४-५ माह बाद सिंचाईका काम क्षीण होने लगा तो दूसरे शिविरमें शामिल होने की अभिलाषा उग्र होने लगी। धर्म कृपासे १३ जुलाई, ८३ को हैदराबादमें पुनः शामिल होने का सौभाग्य मिला। बहुतसा कचरा साफ हुआ। धर्मरूपी खाद डाली गयी और पौधा फिर हरा हुआ। अब इसमें मंगल-पुष्प-कली खिली है। इस बार इसकी सिंचाई और सेवा नित्य-नियमित कर रहा हूँ और विश्वास है इसी प्रकार करता रहूँगा।

इस पुष्पकी सौरभ अब जीवनमें बिखरने लगी है जिसकी सुगन्ध संपर्क में आनेवाले दूसरे भी महसूस करने लगे हैं। आशा है बहुतसे धर्मानुरागी प्रेमी बन्धु, जिन्हें बहुत दिनोंसे निवेदन कर रहा था, अब इस धर्मरसको पानेके लिए स्वतः अग्रसर होंगे। मेरे जीवनमें अब शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, भौतिक सभी प्रकारके अद्भुत लाभ हो रहे हैं। आत्म विश्वास, निर्भयता, समतामें रहनेका प्रबल एवं दूसरोंके प्रति मंगल भावनाका भाव पुष्ट हो रहा है। धर्म-पौधा पुष्ट होगा ही। अब तो आपके चरणोंमें यही पुष्पांजलि अर्पित है।

नमन करूं गुरुदेव को, चरणन शीश नवाय।
धर्म सार ऐसा दिया, पाप पनप नहिं पाय।
रोम रोम किरतगत हुआ, ऋण न चुकाया जाय॥
सबका कल्याण हो!"

पूनामें सार्वजनिक प्रवचन

आगामी ९ जून, १९८५ को पूना हॉस्पीटल अॅन्ड रिसर्च सेंटर, संभाजी पूलके पास अपरान्ह २ से ३ बजे तक सामूहिक साधना एवं ३ से ४ बजे तक पू. गुरुदेव का सार्वजनिक प्रवचन होगा। अधिक जानकारी के लिए श्री लक्ष्मी नारायणजी राठी, 'सुलक्ष्मी', २८ मुकुन्द नगर, पूना : ४११०३७
फोन : ४४०१८१ से संपर्क करें।

मंगल हो!

मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

या हि बुद्ध री वंदना, यो हि बुद्ध सम्मान।
प्रग्या करुणा प्यार सूं, भरल्यां तन मन प्राण ॥१॥
भव बंधन सूं छुटन हित, दियो बुद्ध उपदेस।
प्रग्या तज भगती करै, कटै न करम कलेस ॥२॥
भगती भावावेस सूं, सद्गति हासिल होय।
पर प्रग्या जाग्यां बिना, मुक्त हुवै ना कोय ॥३॥
ढोल मजीरै झांझ सूं, सही न वंदन होय।
अन्तर जगै विपस्सना, सही वंदना सोय ॥४॥
धूप दीप नैवेद्य सूं, नाहिं बुद्ध से मान।
जद मन मँह प्रग्या जगै, हुवै बुद्ध सम्मान ॥५॥
कम्मर सीधी राख कर, मार पालथी बैठ।
याहि बुद्ध री वंदना, अन्तर गंगा पैठ ॥६॥

दोहे धर्म के

बोध जगाय अनित्य का, जब जब शीश नवाय।
तब तब वंदन सफल हो, प्रज्ञा से भर जाय ॥१॥
बोध जगाए दुक्ख का, सादर शीश नवाय।
तो वंदन कल्याणमय, भव-बंधन खुल जाय ॥२॥
बोध जगाय अनात्म का, सविनय शीश नवाय।
तो ही वंदन शुद्ध हो, चित्त शुद्ध हो जाय ॥३॥
झुके यन्त्रवत् जब कभी, हो कटि का व्यायाम।
पर जब मन प्रज्ञा जगे, तब हो बुद्ध प्रणाम ॥४॥
पत्र पुष्प नैवेद्य से, छिछला वंदन होय।
अन्तर जगे विपश्यना, सच्चा वंदन सोय ॥५॥
प्रज्ञा शील समाधि से, करें बुद्ध सम्मान।
यही बुद्ध की वंदना, धरें धरम का ध्यान ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/- आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 6/85

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. र. नं. NS(M) 16/85

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To